ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 177-179
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

आधुनिक संदर्भ में प्राचीन भारतीय शिक्षा दर्शन

डॉ0 स्वास्ती कुमारी
इतिहास, बक्सर (बिहार), भारत

Received-11.09.2023, Revised-17.09.2023, Accepted-21.09.2023 E-mail: swetabxrbxr@gmail.com

सारांश: *शिक्षा जीवन यात्रा का पाथेय एवं मानवीय विकास का सशक्त साधन है। इस संदर्भ में भारतीय दर्शन का गौरवमय इति हास रहा है। प्राचीन भारतीय शैक्षिक व्यवस्था की कति पय वि शेषता गुरुकुल की आवासीय व्यवस्था, शिक्षक का उच्चतम आदर्श एवं शिक्षा के प्रति समर्पण, शिष्य सेआचार्य का पुत्रवत संबंध, गुरुशिष्य का भावपूर्ण आत्मीय संबंध, शिक्षार्थी का पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन स्वानुशासन इकहरी शिक्षा व्यवस्था (सबके लिए समान शिक्षा) निशुल्क शिक्षा विद्यार्थी का सतत मूल्यांकन आदि आज भी कदाचित शिक्षा के गुणात्मक विकास के लिए सर्वथा प्रासंगिक है। प्रस्तुत अध्ययन में प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था की इन्हीं विशेषताओं को आधुनिक शिक्षा के संदर्भ में स्पर्श करने का प्रयास किया गया है।*

कुंजीभूत शब्द– जीवन यात्रा, मानवीय विकास, सशक्त साधन, गौरवमय, शैक्षिक व्यवस्था, आवासीय व्यवस्था, भारतीय दर्शन, पाथेय।

शिक्षा मानव की मूलभूत आवश्यकता है। यह मानव विकास का सशक्त साधन है। एक आदर्श विकसित राष्ट्र का उदय वृहद भौगोलिक क्षेत्र एवं प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता मात्र से ही नहीं, वहां के चरित्रवान, श्रमशील एवं प्रबुद्ध नागरिकों से होता है। जापान इसका जीता–जागता उदाहरण है। अशिक्षा जनतंत्र का प्रमुख अभिशाप है।[1]

प्लेटो की यह उक्ति मात्र जनतंत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि सभी शासन प्रणालियों पर प्रयुक्त होती है। शिक्षा और राष्ट्रीय विकास का परस्पर संबंध है। आज विश्व के जापान, नॉर्वे, स्वीडन, न्यूजीलैंड, डेनमार्क, स्वीटजरलैंड, आयरलैंड आदि छोटे–छोटे देश जहां साक्षरता का स्तर लगभग शत–प्रतिशत है, विकास के उच्च शिखर पर स्थित हैं। अफ्रीका एवं एशिया के अनेक राष्ट्रों के पिछड़ेपन का प्रमुख कारण वहां की साक्षरता प्रतिशत की न्यूनता है। अतः विश्व के सभी राष्ट्र शिक्षा के प्रचार–प्रसार में सतत संलग्न हैं। भारत ने भी स्वतंत्रता के बाद इस दिशा में लंबी छलांग लगाई है, देश के सुदूर ग्राम अंचलों तक विद्यालयों–महाविद्यालयों का संजाल स्थापित हुआ है। हमारा शिक्षा प्रतिशत काफी बड़ा है। हमारे प्रौद्योगिकी एवं प्रबंधन संस्थानों ने अंतरराष्ट्रीय जगत में ख्याति अर्जित की है। आज भारत के शिक्षाविद प्रमुखतया तकनीकी विशेषज्ञ विश्व में अपनी मेधा का प्रदर्शन कर रहे हैं कि तो इस प्रगति के बाद भी अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। 6 से 14 आयुवर्ग के बालक बालिकाओं के निःशुल्क शिक्षा एवं संवैधानिक प्रावधान एवं शिक्षा के मौलिक अधिकार के बाद भी देश के शत–प्रतिशत बच्चों का नामांकन विद्यालयों में सुनिश्चित नहीं किया जा सका है। शिक्षा आज तक देश में सर्व सुलभ नहीं हो सकी है।

आज भारत में विश्व के सबसे अधिक निरक्षर लोग रहते हैं। विश्व के कुल निरक्षर लोगों का लगभग एक तिहाई भाग यहां निवास करता है। 6 से 14 आयुवर्ग के बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने के लिए पूरे देश में 500000 से अधिक शिक्षकों के पद रिक्त हैं। विद्यालयों में विद्यार्थियों के अनुपात में भौतिक एवं शैक्षिक संसाधन उपलब्ध नहीं हैं। उच्च शिक्षा में गुणात्मक शिक्षा को कौन कहे देश के युवाओं के अनुपात में महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की स्थापना नहीं कर सके हैं। ज्ञान आयोग के एक प्रतिवेदन के अनुसार, युवाओं की संख्या के अनुपात में देश मे 1500 विश्वविद्यालयों एवं 50000 महाविद्यालयों की और स्थापना होनी चाहिए। उच्च शिक्षा की स्थिति यह है कि आज सरकार उच्च शिक्षा संस्थानों को शैक्षिक रूप से समृद्ध बनाने के लिए विदेशी विश्वविद्यालयों को यहां लाने के लिए प्रावधान बनाने में संलग्न है, जबकि सदियों पूर्व यहां तक्षशिला और नालंदा जैसे अंतरराष्ट्रीय ख्यातिलब्ध विश्वविद्यालय थे जिनमें विश्व के अनेक देशों के विद्यार्थी अध्ययन के लिए आते थे।[2]

आज देश में गहरा चारित्रिक संकट है। शिक्षालयों में यह नैतिक हास शिक्षार्थी और शिक्षक दोनों स्तर पर परि लक्षित हो रहा है। विद्यालयों में अध्ययन अध्यापन, अनुशासन, चरित्र, नैतिकता, श्रमशीलता प्राचीन गुरुकुल गुरु शिष्य संबंध गुरु के प्रति सम्मान एवं समर्पण आदि वातावरण का सर्वथा अभाव है। हमारी शिक्षा विद्यार्थियों को जिज्ञासु बनाने में असफल सिद्ध हो रही है। अधिकांश विद्यार्थी समय से विद्यालय में उपस्थित नहीं होते, शिक्षा में उनकी अभिरुचि नहीं होती कक्षाओं से पलायन करते हैं। परीक्षाओं में अनुचित साधनों का प्रयोग करते हैं

विद्यार्थियों में शील संपन्नता, अनुशासन, आज्ञा पालन, समाज सेवा, लक्ष्य के प्रति समर्पण एवं प्रति बद्धता का अभाव विद्यमान है। कदाचित उनके समक्ष कोई उच्च आदर्श प्रतिमान भी नहीं है। आज शिक्षा एक व्यवसाय का रूप ग्रहण कर चुकी है। विद्यालयों में मेधावी विद्या–विनय, शिक्षण–कौशल संपन्न शिक्षण व्यवसाय के प्रति समर्पित विषय विशेषज्ञ आचार्यों का भी अभाव है। शासकीय एवं राज्य वित्तपोषित अशासकीय विद्यालयों की नियुक्तियों में भ्रष्टाचार एवं संसाधनों के अभाव में आर्थिक कारणों से शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ती निजी भागीदारी के फल स्वरुप शिक्षा में और गुणात्मक ह्रास आया है। शिक्षण व्यवसाय के प्रति बद्धता एवं अभिरुचि न रखने वाले मात्र रोजगार के लिए शिक्षा में (अपेक्षाकृत कम योग्यता वाले) आए अध्यापकों के कारण भी शिक्षा में काफी गिरावट आई है। देश के युवाओं की जीवन निर्माण से संबंधित शिक्षा जैसे पुनीत कार्य में संलग्न कतिपय शिक्षक युग प्रवाह में भौतिक आकर्षण से अपने मूल कर्तव्यों की उपेक्षा करते हुए व्यक्ति गत शिक्षण अथवा कोचिंग संस्थाओं के संचालन राजनीति या आज के अन्य स्रोतों से धनार्जन में संलग्न हैं।[3]

शिक्षा वस्तुतः सच्चें अर्थों में जीवन निर्माण करने वाली मनुष्य बनाने वाली चरित्र गठन करने वाली एवं जीवन में मानवीय मूल्यों का विकास करने वाली होती है। स्वतंत्रता के सात दशक बाद भी हमारी शिक्षा देश के युवाओं को आत्मनिर्भर बनाने एवं उनमें उच्च नैतिक

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

मूल्यों को समाहित करने में असफल रही है। शिक्षा संस्थान विद्यार्थियों के मस्तिष्क में मात्र पुस्तकीय ज्ञान भरने तक सीमित हैं। विद्यार्थियों का ऊर्जा वान बहुमूल्य जीवन सैद्धांतिक विषयों को रटने–रटाने में व्यतीत हो रहा है। विश्वविद्यालय मात्र युवाओं के मस्तिष्क में भरे हुए पुस्तकीय ज्ञान के परीक्षण के संस्थान बने हुए हैं वह ऐसी उपाधि यांवि तरित कर रहे हैं, जिनकी जीवन में कोई विशेष उपयोगिता नहीं, जिनसे डिग्री धारी बेरोजगार युवाओं की मात्र लंबी फौज खड़ी हो रही है। हमारी वर्तमान मूल्यांकन विधा भी अंक अर्जन पर आधारित है, परीक्षा में मस्तिष्क में भरे हुए ज्ञान को उगल कर जो अधिक अंक अर्जित करता है। वह श्रेष्ठ घोषित किया जाता है, वर्तमान परीक्षा प्रणाली में दक्षता कौशल, मानवीय मूल्यों एवं चारित्रिक विकास के मूल्यांकन की कोई विधा विद्यमान नहीं है, इनके अतिरिक्त गुणात्मक शिक्षा, शिक्षा के मूलभूत उद्देश्य, बहुआयामी पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धति, रोजगार परक शिक्षा, मानवीय मूल्यों के विकास हेतु शिक्षा आदि विषयों पर भी चितंन अपेक्षित है। प्रस्ततु अध्ययन में प्राचीन शिक्षा दर्शन के आलोक में उन बिदुंओं को स्पर्श करने का प्रयास किया गया है, जो आधुनिक शिक्षा के लिए मार्गदर्शी एवं प्रासंगिक हो सकते हैं।[4]

शिक्षा का उद्देश्य– भारतीय शिक्षा दर्शन में विद्या को अमृत एवं अविद्या को मृत्यु कहा गया है तथा शिक्षा का उद्देश्य या विद्या या विमुक्तये अर्थात समस्त सांसारिक बंधनों अभावों से मुक्ति प्रदान करते हुए अमृत्व (मोक्ष जीवन का श्रेष्ठतम विकास) सुनिश्चित करना था। प्राचीन भारत में पुरुषार्थ चतुष्टय अर्थात धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति जीवन का अभीष्ट था। इस अभीष्ट में जीवन का समग्र लौकिक (अर्थ और काम) एवं पारलौकिक (धर्म और मोक्ष) उत्कर्ष समाहित था शिक्षा जीवन में पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त करने का प्रमुख साधन थी। शिक्षा का उद्देश्य जीवन में पूर्ण भौतिक उत्कर्ष एवं आध्यात्मिक विकास सिद्ध करना था। प्राचीन विद्या के गुरुकुल एवं आश्रम इन्हीं विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए परा (ब्रह्म या अध्यात्म विद्या) एवं अपारविद्या (भौतिक विद्या) के माध्यम से ऐसी शिक्षा में संलग्न थे, जिससे चरित्रवान, श्रमशील, विद्या विनय संपन्न एवं तेजस्वी विद्यार्थी उद्भव होते थे। कदाचित शिक्षा का यही उद्देश्य भारतीय शिक्षाविदों डॉ0 राधाकृष्णन की नैतिकता एवं चरित्र निर्माण करने वाली शिक्षा, महर्षि अरविद की आध्यात्मिक विकास की शिक्षा, स्वामी विवेकानद की जीवन निर्माण करने वाली मनुष्य बनाने वाली एवं चरित्र गठन करने वाली तथा महात्मा गांधी की शरीर मन एवं आत्मा की सर्वोत्तम विकास करने वाली शिक्षा की अवधारणा का अभिप्रेरक है।[5] कदाचित शिक्षा का यही उद्देश्य पाश्चात्य विचारक पेस्टोलॉजी की मनुष्य की अंतः शक्तियों का स्वाभाविक सामंजस्य पूर्ण प्रगतिशील विकास संबंधी शिक्षा का मार्ग दर्शाती है। स्वतंत्रता के लंबे अंतराल के बाद भी शिक्षा के उद्देश्य को हम प्राप्त नहीं कर सके हैं और आज भी यह हमारे लिए आदर्श बना हुआ है।

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा– निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की वर्तमान संवैधानिक अवधारणा भारत में सभ्यता के प्रारंभ वैदिक काल से ही विद्यमान थी। प्राचीन भारतीय अवधारणा में पितृ ऋण से उन्मुक्त होने के लिए पुत्र प्राप्ति ही आवश्यक नहीं थी, पुत्रों का सुशिक्षित एवं ज्ञानवान होना भी अनिवार्य था। ऋषि ऋण सेभी मुक्ति के लिए मंत्र दृष्टा ऋषियों के ज्ञान का प्रचार–प्रसार एवं अध्ययन अध्यापन आवश्यक था। शिक्षा को अनिवार्य बनाने के उद्देश्य से भारतीय चिन्तकों (ऋषियों) ने मानव जीवन को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास चार आश्रमों में विभक्त किया और आश्रमवास एवं उसके नियमों का अनुपालन अनिवार्य बताया। ब्रह्मचर्य आश्रम विद्यार्जन चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व विकास का माध्यम था। इस माध्यम में अध्ययन अनिवार्य था। स्मृति में स्वाध्याय का परित्याग अपराध ा घोषित है। सबको शिक्षा प्रदान करने हेतु प्रचुर मात्रा में अध्यापक उपलब्ध हो एतदर्थ समाज के एक वर्ग विशेष का अध्यापन कर्तव्य निधारित किया गया। अध्यापन प्रत्येक विद्वान ब्राह्मण का अनिवार्य कर्तव्य था।

गृहस्थ के पंच यज्ञों में ब्रम्ह यज्ञ महत्वपूर्ण यज्ञ के रूप में परिभाषित है। अध्यापन ही ब्रम्ह यज्ञ था। विद्वान ब्राह्मण के लिए निःशुल्क शिक्षा देना अनिवार्य किया गया, शुल्क लेकर अध्यापन अपराध घोषित है। ज्ञान का विक्रय समाज में दृष्टि से देखा जाता था। ब्रम्ह यज्ञ संपादन के लिए प्रत्येक ब्राह्मण के साथ कुछ शिष्यों का होना आवश्यक था। इन शिष्यों में आचार्य के पुत्र भी समाहित थे आचार्य का ग्रह ही विद्यालय था आचार्य पुत्र व अन्य शिष्यों के लिए भी भोजन आवास एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करते थे। इस प्रकार के विद्यालयों का प्रचलन वैदिक काल में विशेष रूप से था। कालांतर में उच्च शिक्षा के उद्देश्य से गुरुकुल एवं आश्रमों का उदय हुआ गुरुकुल एवं आश्रम उच्च शिक्षा के केंद्र थे।[6] प्राचीन भारत में आचार्य भारद्वाज, गौतम, परशुराम, महर्षि व्यास कण्व, अगस्त्य, वशिष्ठ, विश्वामित्र, बाल्मीकि, द्रोणाचार्य, संदीपनी एवं शौनक आदि ऋषियों के आश्रम उच्च शिक्षा के केंद्र के रूप में प्रख्यात थे। शिक्षा को निःशुल्क बनानेके उद्देश्य से विद्यालयों के संचालन के लिए राजा और प्रजा का मुक्त हस्त से दान देने का कर्तव्य निर्धारित किया गया था, जिससे आचार्य भौतिक चितांओं से मक्ुत होकर गणुात्मक शिक्षा प्रदान कर सकें। बौद्ध काल में विश्वविख्यात नालंदा विश्वविद्यालय जिसमें 10000 आवासीय विद्यार्थी एवं 1000 आचार्य थे। दान में प्राप्त 200 ग्रामों के राजस्व एवं उत्पाद से संचालित तथा निर्धन से निर्धन विद्यार्थी भी शिक्षा ग्रहण कर सके। इसके लिए शिक्षा ग्रहण करना ब्रह्मचारी का अनिवार्य कर्तव्य निर्धारित किया गया। समाज के सभी वर्गों की शिक्षा के लिए एक समान शिक्षा व्यवस्था थी। राजा रंक और आचार्य के पुत्र एक ही साथ गुरुकुल में अध्ययन करते थे। निर्धन सुदामा महर्षि सांदीपनि के आश्रम में श्री कृष्ण के सहपाठी थे। राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सामान्य ब्रह्मचारियों के साथ महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में अध्ययन करते थे।

सबके लिए शिक्षा– प्राचीन भारत में शिक्षा व्यवस्था अत्यंत समृद्ध थी। शिक्षा सबके लिए विद्यमान थी, डॉ0 अल्तेकर के अनुसार, उपनिषद काल में भारत में साक्षरता 80% थी। उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार उसी को था, जो शिक्षित होने पर शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रस्तुत रहता था। समावर्तन संस्कार के समय स्नातक यह व्रत लेता था कि वह समाज में शिक्षार्थियों को विद्यादान करेगा। प्राथमिक शिक्षा सबको सुलभ थी। प्रथमतः प्राथमिक शिक्षा का दायित्व कुल का था। माता पिता बालक के प्रथम शिक्षक थे। पिता ही प्रायः अक्षर ज्ञान कराता था, पढ़ना लिखना एवं समझना प्रारंभिक शिक्षा की में समाहित था। आचार्य चाणक्य के अनुसार, राजकुमारों की

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

शिक्षा अक्षर ज्ञान एवं अंक ज्ञान से आरंभ होती थी। माता आया व्यवहार की शिक्षा देती थी। परिवार बालक की प्रथम पाठशाला थी। कालांतर में योग्य माता–पिता के अभाव तथा शिक्षा में विशिष्टीकरण के फलस्वरूप प्रारंभिक शिक्षा का दायित्व पुरोहित या आचार्य की परिधि में समाविष्ट हुआ। दक्षिण भारत से प्राप्त शिलालेखों से यह उल्लेख मिलता है कि सामान्यता सामूहिक रूप सेपूरे गांव की ओर से ही पाठशाला संचालित होती थी।[7]

पाठशाला में शिक्षक प्रायः गांव के पुरोहित होते थे। बौद्ध काल में जन भाषा में प्राथमिक शिक्षा का विस्तार हुआ, लोगों को आत्मनिर्भर बनाने के उद्देश्य से व्यावसायिक एवं औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था थी। यह शिक्षा प्रायः वंशगत थी। प्रत्येक वर्ण के व्यक्तियों को उसकी अभिरुचि के अनुसार, कर्मकांड पौरोहित्य, अस्त्र संचालन सुविधा, कृषि पशुपालन, वाणिज्य, विविध शिल्पकला कौशल, संगीत गायन वादन, नृत्य, अभि यंत्रण या भवन निर्माण, भवन रक्षा तथा समाज उपयोगी विविध उपकरणों एवं यंत्रों के निर्माण की व्यावसायिक एवं औद्योगिक शिक्षा प्रदान की जाती थी।

उच्च शिक्षा का अवसर योग्य एवं मेधावी व्यक्तियों के लिए सुलभ था। वैदिक कर्मकांड में यज्ञादि धार्मिक एवं अध्यापन का कार्य प्राचीन भारत में एक वर्ण वि शेष अर्था ब्राह्मण का कर्तव्य था। उसके लिए वेद वेदांग एवं धर्म शास्त्रों का अध्ययन अनिवार्य था कि ब्राह्मण का यह विशेषाधिकार जात्या नहीं उसकी धार्मिकता, सदाचार संपन्नता एवं वेद पारंगतता के कारण था। ब्राह्मण को वेद अध्ययन की सुविधा ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होने के कारण नहीं उसकी मेधा, शिक्षा की पात्रता, ज्ञान पिपासा एवं भौतिक आकर्षणों से दूर रहते हुए बिना किसी भौतिक व्यवसाय के शिक्षा के प्रति समर्पण के कारण प्राप्त थी। मनु ने जो आचारच्युत धर्म विरुद्ध आचरण करने वाले गुण भी है। ब्राम्हण को असंभोज्य (धार्मिक कृत्यों में भोजन कराने के अयोग्य) असंभाज्य (यज्ञ पालन के अयोग्य) असंपाठ्य (अध्यापन के अयोग्य) अवि वाहन एवं यहां तक की अप्रणस्य घोषित किया है।

शिक्षक शिक्षार्थी संबंध– शिक्षक शिक्षार्थी और शिक्षालय शिक्षा के प्रमुख घटक हैं। प्राचीन भारत में आचार्य का गृह ही शिक्षालय था जिसे आचार्य कुल गुरुकुल विद्या आश्रम कहते थे। गुरुकुल या आश्रम प्रायः अरण्य के प्रशांत एवं सुरम्य वातावरण में जहां आचार्य की गायों को चरने के लिए विस्तृत भूभाग, भजन पूजन, अग्निहोम आदि की सामग्रियों की उपलब्धता के लिए वृक्ष एवं पुष्प वाटिका एवं स्नान के लिए नदी या सरोवर तथा कृषि के लिए पर्याप्त भूमि एवं फलों से युक्त उद्यान विद्यमान हो अवस्थित होते थे। उपनयन संस्कार के पश्चात ब्रह्मचारी गुरुकुल में आचार्य के परिवार के सदस्य के रूप में उनके सतत मार्गदर्शन में अध्ययन करते थे। आचार्य शिक्षण के प्रति समर्पित थे। वह ब्राह्मणत्व, ज्ञान शील, सदाचार, धार्मिकता, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह के साक्षात मूर्ति थे। शिक्षण आचार्य का व्यवसाय नहीं व्रत और संकल्प था। अध्ययन अध्यापन उनका अनिवार्य धर्म निर्धारित था।

चरित्र एवं अनुशासन– प्राचीन भारत में विद्या निकेतन आवासीय थे, जहां ज्ञानार्जन चारित्रिक विकास एवं अनुशासन का नैसर्गिक वातावरण विद्यमान था। ऋषि ऋतंभरा प्रजा संपन्न पवित्र जीवन जीने वाले शिक्षा के लिए समर्पित ऋषि एवं आदर्श आचार्य थे। आचार्य विद्यालय के मात्र शिक्षक ही नहीं शिक्षार्थी के गुरु भी थे। समग्र व्यक्तित्व के विकास पर उनकी सतत सतर्क दृष्टि रहती थी। विद्यार्थी प्रातः काल से रात्रि में शयनपर्यंत आचार्य के पर्यवेक्षण एवं निर्देशन में गुरुकुल के नियमों का पालन करते थे। शिष्य के साथ गुरु का पुत्रवत संबंध था। चरित्र निर्माण विषयक विविध कार्यक्रम संध्या, उपासना, अग्नि होत्र, वेद घोष, योग, आसन प्राणायाम, उपवास, व्रत, गुरुचर्या, गौसेवा आदि गुरुकुल की दिनचर्या के अभिन्न अंग थे। गुरुकुल के विद्यार्थी शिक्षार्थी नहीं ब्रह्मचारी थे, ब्रह्मचर्य के नियमों का जीवन में आचरण विद्यार्थी के लिए अनिवार्य था।[8]

अनुशासन के लिए सामान्यतः शारीरिक दंड का निषेध था किंतु विशेष परिस्थितियों में लघु दंड अनुमन्य था। निर्धारित भाग से अधिक दंड देने पर शिक्षक दंड की सीमा में थे। आधुनिक विद्यालयों की तरह चरित्र नैतिकता एवं अनुशासन के लिए नैतिक शिक्षा की कक्षाएं संचालित नहीं होती थी। गुरुकुल का समग्र वातावरण ही चरित्र एवं अनुशासन का पर्याय था। अनुशासन का आधार उपदेश या प्रवचन नहीं, बल्कि शिक्षक का आचरण एवं आदर्श व्यक्तित्व था। शिष्यों के लिए शिक्षक आदर्श प्रतिमान थे। आज हमारे शिक्षण संस्थान अपने प्राचीन गौरव को खो रहे हैं। विद्यार्थियों के चरित्र अनुशासन एवं नैतिक मूल्यों में सतत क्षरण हो रहा है, विद्यार्थियों में बढ़ती अनुशासनहीनता एवं चारित्रिक संकट के वर्तमान युग में क्या ही अच्छा होता, कि शिक्षक स्वयं अपने आदर्श आचरण एवं प्रभावी व्यक्तित्व से विद्यार्थियों के लिए एक उदाहरण बनते। वस्तुतः चरित्र एवं आचरण ही अनुशासन का मूल आधार होता है। माता–पिता अभिभावक एवं शिक्षक स्वयं आदर्श प्रस्तुत कर अनुशासन का सच्चा पाठ पढ़ा सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ग्रीक पोलिटिकल थ्योरी– सर ऑनेस्ट बारकर– प्लूटो एंड हिज प्रेडिसेसर्स लंदन पृष्ठ–149.
2. संविधान की धारा–45.
3. शिक्षा अधि नियम–2009.
4. दैनिक जागरण समाचार पत्र दिनांक 30–12–2010.
5. बृहदारण्यकोपनिषद डॉ0 अनंत सदाशिव अल्तेकर प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति वाराणसी–1/5/7.
6. याज्ञवलक्य स्मृति – 3/239–242.
7. मनुस्मृति – 3/71, 4/71.
8. अध्यापन ब्रह्मयज्ञ–3/70.

*****